अध्याय—दो

कृषि उपज में वृद्धि व कमी

1973-74 में कृषि उपज

2.1 वर्ष 1967-68 से लेकर 1970-71 तक खेती की पैदावार में लगातार वृद्धि होती रही। इस अवधि में वृद्धि की औसत दर 4.1 प्रतिशत रही। पैदावार का सूचक अंक (यदि 1961-62 को समाप्त होने वाले तीन वर्षों का सूचक अंक 100 मान लिया जाय तो) 1970-71 में सबसे अधिक अर्थात् 131.4 तक पहुंच गया था। इसके बाद इसमें बहुत उतार-चढ़ाव आये और पहले इसमें लगातार जो वृद्धि दिखाई दे रही थी वह लगता है रुक गयी। मौसम के अधिकांशतः प्रतिकूल बने रहने के कारण 1970-71 के बाद अगले दो वर्षों तक सूचक अंक घटता गया। इसके पश्चात् 1973-74 में स्थिति कुछ संभली जब कि सूचक अंक सबसे अधिक अर्थात् 131.6 पर पहुंच गया। फिर भी, 1973-74 का सूचक अंक 1970-71 के मुकाबले कोई खास ऊंचा नहीं था। चौथी आयोजना के दौरान पैदावार में वृद्धि की दर कुल मिलाकर केवल 2.8 प्रतिशत प्रति वर्ष ही रही। कई फसलों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में हुई वृद्धि से कम पड़ गयी और इसका परिणाम यह हुआ कि बनस्पति तेलों जैसी रोजाना इस्तेमालमें आने वाली आवश्यक वस्तुओं के प्रति व्यक्ति मिल सकने की दर गिर गयी। खेती के क्षेत्र में स्थिति का असंतोषजनक होना ही राष्ट्रीय आय के बढ़ने से रुक जाने और तीव्र मुद्रास्फीतिकारी दबावों के 1972-73 के चले आते रहने का मूल कारण है। मुख्य फसलों के उत्पादन में होने वाली प्रगति की संक्षिप्त समीक्षा निम्नलिखित है।

2.2 सातवीं दशाब्दी के मध्य से, अधिक उपज देने वाले बीजों पर आधारित खेती के नये तौर तरीकों का तेजी से व्यापक रूप से इस्तेमाल किये जाने के कारण अनाज का उत्पादन 1970-71 में सबसे अधिक 1084 लाख मैट्रिक टन हो गया, परन्तु 1972-73 में घट कर 970 लाख मेट्रिक टन रह गया। खरीफ के दिनों में मौसम अच्छा रहने के बावजूद भी 1973-74 में अनाज की उपज केवल 1036 लाख मेट्रिक टन तक ही पहुंची। यद्यपि खरीफ की फसल में अनाज की पैदावार 667 लाख मेट्रिक टन तक ही पहुंची जो कि 1970-71 के 689 लाख मेट्रिक टन के उच्चतम स्तर से बहुत नीचे नहीं है तो भी रबी की फसल में अनाज की पैदावार केवल 369 लाख मेट्रिक टन हुई जब कि 1972-73 में 384 लाख मेट्रिक टन हुई थी तथा 1971-72 में इसका उच्चतम स्तर 422 लाख मेट्रिक टन रहा था। अतः 1973-74 में अनाज की कुल मिलाकर उपज केवल चौथी आयोजना में निर्धारित 1290 लाख मेट्रिक टन के लक्ष्य से ही कम नहीं थी बल्कि 1970-71 और 1971-72 के वास्तविक उत्पादन से भी कम थी। इसके परिणामस्वरूप भारत की अन्न की समस्या को सुचारू रूप से हल करना बहुत कठिन हो गया। 1970-71 की तुलना में उत्पादन में कमी का कारण चावल को छोड़कर सभी फसलों की उपज में कमी का होना था। चावल की उपज जो 1971-72 के 431 लाख मेट्रिक टन के उच्चतम स्तर से 1972-73 में घटकर 392 लाख मेट्रिक टन रह गयी थी, बढ़ कर 437 लाख मेट्रिक टन के सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गयी। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि सातवीं दशाब्दी के मध्य से ही अधिक उपज देने वाली नयी किस्मों की खेती के क्षेत्र का तेजी से विस्तार किये जाने के बावजूद भी, 1964-65 में चावल की पैदावार की औसतन वृद्धि केवल 1.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर ही रही। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि नयी कृषि प्रौद्योगिकी का चावल की पैदावार पर अब तक कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। गेहूं की पैदावार जिससे सबसे अधिक आशा है और जिसकी उपज 1971-72 और 1972-73 के दोनों वर्षों में चौथी आयोजना के लक्ष्य से (1973-74 में 240 लाख मेट्रिक टन) बढ़ गयी थी दुर्भाग्यवश दूसरी बार भी अगले वर्ष अर्थात् 1973-74 में घटकर 221 लाख मेट्रिक टन रह गयी। मोटे अनाजों की उपज 1972-73 के 231 लाख मेट्रिक टन से बढ़कर 1973-74 में 280 लाख मेट्रिक टन हो गयी। हालांकि मोटे अनाजों की पैदावार हर वर्ष घटती बढ़ती रहती है लेकिन चौथी आयोजना में इनकी पैदावार सामान्यतः जिस स्तर से आगे नहीं बढ़ सकी है उक्त पैदावार उस स्तर से भी कम हुई। दालों का उत्पादन जो 1968-69 के 104 लाख मेट्रिक टन था 1970-71 में बढ़कर 118 लाख मेट्रिक टन हो गया था लेकिन 1972-73 से हर वर्ष कम हो रहा है और 1973-74 में इनका उत्पादन केवल 98 लाख मेट्रिक टन रह गया।

2.3 वाणिज्यिक फसलों की उपज भी खराब मौसम के कारण 1972-73 में अच्छी नहीं रही लेकिन 1973-74 में इन सभी फसलों का उत्पादन अच्छा हो गया। इस तरह 5 प्रमुख वनस्पति तेलहनों का उत्पादन 1972-73 के 69 लाख मेट्रिक टन से बढ़ कर 1973-74 में 87 लाख मेट्रिक टन तक हो गया। इसी तरह कपास की पैदावार 1972-73 के 54 लाख गांठों से बढ़कर 1973-74 में 58 लाख गांठें हो गयी तथा गन्ने का उत्पादन 128 लाख मेट्रिक टन से बढ़ कर 140 लाख मेट्रिक टन हो गया। परन्तु 1973-74 में इन सभी वस्तुओं की पैदावार चौथी आयोजना के लक्ष्य से कम रही। कपास के सिवाय इन वस्तुओं की पैदावार में तेजी से वृद्धि नहीं हुई। चूंकि समूचे औद्योगिक उत्पादन के सूचक अंक का हिसाब लगाते समय कृषि पर आधारित उद्योग लगभग 45 प्रतिशत बैठते हैं इसलिए वाणिज्यिक फसलों की पैदावार के मन्द होने से चौथी आयोजना की सम्पूर्ण अवधि में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने में रुकावट आ गयी है।

2.4 चौथी आयोजना की अवधि में कृषि को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए जो जोरदार प्रयत्न किये गये हैं उन प्रयत्नों की भारत में कृषि सम्बन्धी स्थिति का मूल्यांकन करते समय उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, चौथी आयोजना में यह परिकल्पना की गयी थी कि पांच वर्षों की अवधि में अधिक अन्न की उपज देने वाली किस्मों की खेती 158 लाख हैक्टयर और भूमि पर की जायगी। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि जो सफलता मिली है वह निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक है और चौथी आयोजना की अवधि में अधिक उपज देने

वाली किस्मों की खेती 160 लाख हैक्टेयर और भूमि पर होने लगी है। इसी तरह 71 लाख हैक्टेयर और भूमि में बड़ी, दरमियानी और लघु सिंचाई शुरू करने का जो लक्ष्य चौथी आयोजना की अवधि में रखा गया था उसे पूरा कर लिया गया है। भू-संरक्षण के विस्तार का जो लक्ष्य रखा गया था उससे कहीं अधिक भूमि संरक्षण कार्यक्रम में शामिल कर ली गयी है।

2.5 फिर भी सचाई यह है कि इन सभी विकास कार्यक्रमों के बावजूद भी चौथी आयोजना में कुल मिलाकर कृषि उत्पादन की वृद्धि की दर प्रति वर्ष 2.8 प्रतिशत से अधिक नहीं हुई जो एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। यह भी सत्य है कि 1971-72 से कृषि उपज में जो लगातार कमी रही है उसका मुख्य कारण मौसम का खराब होना ही रहा है। लेकिन इनमें जो अन्तर आ गया है उसके लिए मौसम को ही पूर्णतः दोषी नहीं ठहराया जा सकता। स्पष्टतः मौसम के अलावा और भी बहुत सी बाधाएं हैं तथा भविष्य में कृषि-विकास की किसी भी सुदृढ़ आयोजना तैयार करते समय हमें इन रुकावटों को नजरन्दाज नहीं करना चाहिए।

2.6 जैसा कि पहले बताया गया है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों से और अधिक भूमि पर पैदावार करने का जो लक्ष्य रखा था गया उससे भी अधिक भूमि पर खेती करने के बावजूद भी चौथी आयोजना में निर्धारित लक्ष्य के अनुसार अनाज की पैदावार नहीं हुई। वर्ष 1973-74 तक इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 113.0 लाख हैक्टेयर भूमि में गेहूं की खेती की गयी थी जबकि चौथी आयोजना में इसका लक्ष्य 77 लाख हैक्टेयर भूमि का रखा गया था। इतना होने पर भी 1973-74 में गेहूं का उत्पादन चौथी आयोजना के लक्ष्य से कम था। दरअसल बात यह है कि 1972 से कल्याण सोना को, जो एक अधिक उपज देने वाली लोकप्रिय किस्म है, रतुआ की बीमारी का सामना करना पड़ रहा है जिसके ही परिणामस्वरूप 1972-73 से गेहूं की पैदावार में लगातार कमी होती जा रही है। हाल ही में अर्जुन 2009 जैसे रतुआ निरोधक किस्मों के बीजों का प्रयोग शुरू किया गया जिससे पैदावार में वृद्धि होने की संभावना है लेकिन इन बीजों से अधिक मात्रा में उपज लेने में कुछ समय लगेगा। चावल के मामले में 1973-74 में वास्तव में 94 लाख हैक्टेयर भूमि में अधिक उपज देने वाली किस्म के बीजों से खेती की गयी थी जो चौथी आयोजना के निर्धारित लक्ष्य अर्थात् 101 लाख हैक्टेयर भूमि से थोड़ी सी ही कम थी। इतना होने पर भी, इसकी पैदावार में उस हिसाब से वृद्धि नहीं हुई जितनी वृद्धि अधिक भूमि में खेती करने से अपेक्षित थी। इसका कारण यह है कि अधिक उपज देने वाली जिन किस्मों की खेती की जा रही है उनमें से अधिकांश के लिए पर्याप्त पानी की जरूरत होती है जिन्हें वर्षा पर निर्भर रहने वाले खेतों में पैदा करना आसान काम नहीं है। काफी उपज देने वाली आई०आर० 20, पूसा 2-21 और रत्ना जैसी काफी उपज देने वाली कुछ नयी किस्में निकाली गयीं हैं लेकिन उनका पैदावार पर अभी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। मोटे अनाजों में, अब तक केवल संकर बाजरे से ही पैदावार अच्छी मिली है। दालों के बारे में अभी तक अधिक उपज देने वाली किस्में नहीं आयी हैं परन्तु कुछ थोड़े समय में उपज देने वाली और फोटो इनसेंसीटिव किस्मों में जिन्हें अब खोज निकाला गया है, भविष्य में काफी उपज होने की उम्मीद है।

2.7 जहां तक वाणिज्यिक फसलों का सम्बन्ध है नयी किस्मों का केवल कपास पर ही कुछ अच्छा प्रभाव पड़ा है। सिंचित क्षेत्रों में एम० सी०यू०-5, हाईब्रिड-4 और वरलक्ष्मी जैसी किस्में काफी लोकप्रिय हो चली हैं और इनसे कुल कपास का लगभग 1/6 उत्पादन होता है। परन्तु कपास की उपज जहां भी होती है वहां कुछ भाग में सिंचाई होती है और ऐसी जमीन के लिए दरमियाने रेशे वाली कपास की कोई भी किस्म अब तक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई है। इसका नतीजा यह हुआ है कि 1971-72 में जो 66 लाख गांठ का उत्पादन हुआ था और जो सबसे अधिक था उससे अधिक कपास की पैदावार न बढ़ सकी।

2.8 टेक्नीकल रुकावटों के अलावा खेती में आने वाली अन्य रुकावटें भी हैं जैसे रासायनिक उर्वरकों का कम मात्रा में मिल सकना, अच्छे बीजों की कम सप्लाई और उपलब्ध सिंचाई साधनों के अपर्याप्त उपयोग। वर्ष 1973-74 में एन० पी० के० रासायनिक खाद 29.8 लाख मैट्रिक टन उपलब्ध था जब कि चौथी आयोजना में इसका लक्ष्य 55 लाख मैट्रिक टन रखा गया था। जहां पहले के वर्षों में उर्वरकों का उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न अधूरे रहने के कारण उर्वरकों का उपभोग कम हो गया था वहां 1972-73 से देश में आर्याप्त उत्पादन होने और विदेशों से आयात करने के लिए थोड़ी मात्रा में माल मिल सकने के कारण और भी बाधाएं उत्पन्न हो गयीं। देश में जितनी मात्रा में उर्वरक इस्तेमाल किया जा रहा है उसका पहले ही 50 प्रतिशत आयात से पूरा किया जा रहा है। इसके अलावा किसान को इस उर्वरक के इस्तेमाल के लिए काफी रकम खर्च करनी पड़ती है और उपयुक्त ऋण तथा विस्तार सेवाओं के अभाव में अधिकतर छोटे किसान अपनी पैदावार बढ़ाने में इसके लाभ से वंचित रह जाते हैं। देश के बहुत से भागों में आधारभूत ढांचा कमजोर चला आ रहा है इसलिए इसकी वितरण प्रणाली में भी बाधाएं आ जाती हैं।

2.9 उन्नत बीजों के वितरण करने की व्यवस्था भी अपर्याप्त सिद्ध हुई है और अभी भी काफी हद तक मांग पूरी नहीं हो पाती। कमी कितनी है इसका पक्का अनुमान अभी नहीं मिला है। फिर भी उपलब्ध आंकड़ों से यह अनुमान लगाया गया है कि 1973-74 में जितनी आवश्यकता थी उसकी तुलना में मुश्किल से 30 प्रतिशत प्रमाणित बीज लोगों को मिलता है। गेहूं और चावल के बीजों की खास तौर पर कमी है। इस कमी को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य फार्म निगम और तराई विकास निगम ने बीज उत्पादन के अपने कार्यक्रम का विस्तार करना शुरू कर दिया है। राज्य सरकारें भी बीज निगमों की स्थापना कर रही हैं ताकि वे उन्नत बीजों का उत्पादन और इस तरह के बीज अधिक से अधिक पैदा करना शुरू कर सकें।

वर्ष 1974–75 में कृषि की सम्भावनाएं

2.10 वर्ष 1973-74 में जब रबी की फसल खराब हुई तो आशा की गयी थी कि खरीफ के अगले मौसम में प्रकृति इस हानि को पूरा कर देगी परन्तु जैसा कि हुआ, देश को बड़े पैमाने पर बाढ़ और सूखे का सामना करना पड़ा। एक ओर, असम और बिहार राज्य बाढ़-ग्रस्त हो गये तो दूसरी ओर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, गुजरात और राजस्थान के इलाकों में सूखा पड़ा। इससे चालू वर्ष की आशाओं पर पानी फिर गया। खरीफ की पैदावार के पक्के अनुमान अभी तक नहीं मिले हैं। परन्तु देश के विभिन्न भागों के मौसम को देखते हुए अनुमान लगाया गया है कि खरीफ के मौसम में अनाज की पैदावार 620 लाख मेट्रिक टन से अधिक नहीं होगी। खरीफ की फसल में चावल की पैदावार लगभग 390 लाख मेट्रिक टन हो सकती है जबकि 1973-74 में इसकी पैदावार लगभग 410 लाख मेट्रिक टन हुई थी। इस कमी का कारण मुख्यतः तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश राज्यों में पैदावार

में कमी का होना है । बाजरे के मामले में बहुत अधिक कमी होने का अनुमान लगाया गया है । इसकी पैदावार पिछले वर्ष 70 लाख मेट्रिक टन से भी अधिक थी। इसकी तुलना में इस बार 30 लाख मेट्रिक टन की कमी होने का अनुमान है । राजस्थान, और गुजरात में भारी कमी होने तथा कुछ हद तक आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में भी कुछ कमी होने का अनुमान है । अनुमान है कि ज्वार, मक्का और दालों की पैदावार पिछले वर्ष की तुलना में थोड़ी कम ही होगी ।

2.11 सौभाग्य से, रबी की अगली फसल में अधिक पैदावार होने की आशा है । कुल मिलाकर मौसम ठीक ही रहा है हालांकि तमिलनाडु जैसे राज्यों में वर्षा कम हुई है । अब तक जो संकेत मिले हैं उनसे यह आशा की जा रही है कि रबी की फसल 1973-74 में हुए 368.9 लाख मेट्रिक टन से काफी अधिक होगी और शायद 1971-72 के उच्चतम स्तर अर्थात् 422 लाख मेट्रिक टन के आसपास ही पहुंच जाय।

2.12 इसमें कोई संदेह नहीं कि आगामी रबी की फसल से जो आशाएं बंधी है उससे भारत की अन्न की स्थिति को और सुचारु रूप से संभालने में सहायता मिलेगी। फिर भी इस तथ्य से कि 1974-75 में होने वाली अनाज की कुल उपज 1973-74 में हुई अनाज की उपज से कोई विशेष अच्छी नहीं होगी, इस बात का पता चलता है कि मांग और पूर्ति में अभी भी बहुत बड़ा अन्तर बना हुआ है । इस अन्तर को दूर करने और सरकारी वितरण प्रणाली के माध्यम से मांग को बराबर पूरा करते रहने के उद्देश्य से सरकार ने 1974-75 में लगभग 50 लाख मेट्रिक टन अनाज का आयात करने का प्रबन्ध किया है। परन्तु इन आयातों से हमारे भुगतान-शेष पर काफी दबाव पड़ता है और इसलिए इस भांति अन्न की कमी हमेशा पूरी नहीं की जाती रहेगी ।

2.13 खरीफ की फसल में 1974-75 के दौरान मौसम के प्रतिकूल होने के कारण स्वभावतः वाणिज्यिक फसलों पर भी इसका खराब असर पड़ा । मानसून के देरी से आने और महाराष्ट्र, गुजरात और आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में वर्षा कम होने के कारण इन क्षेत्रों में खरीफ की मूंगफली की फसल पर बुरा प्रभाव पड़ा। जिन क्षेत्रों में मूंगफली की खेती होती है उन क्षेत्रों को सिंचाई की परियोजनाओं में शामिल करके इस कमी को दूर करने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं । जिन क्षेत्रों में वर्षा देर से होती है वहां सूरजमुखी और कुसुम्भ की खेती करने के लिए एक कार्यक्रम भी शुरु किया गया है । इन उपायों से तेलहनों की पैदावार की कमी को कुछ हद तक दूर किया जा सकता है फिर भी इसकी पैदावार के लगभग 70 लाख मेट्रिक टन तक होने की आशा है जो कि पिछले वर्ष से कम है । कपास की पैदावार के अच्छी होने की आशाएं पिछले वर्ष की अपेक्षा अधिक है । मुख्य रूप से कपास उगाने वाले कुछ राज्यों में मौसम प्रतिकूल होने के बावजूद अनुमान है कि वर्ष के दौरान कपास की कुल पैदावार लगभग 60 लाख गांठ से भी अधिक होगी। वाणिज्यिक अनुमानों के अनुसार जो आम तौर पर सरकारी अनुमानों से अधिक होते हैं, कपास की पैदावार 65 लाख गांठ होगी। दूसरी ओर यह पता चला है कि उड़ीसा को छोड़कर सभी जूट उगाने वाले राज्यों में जूट की खेती काफी घट गयी है । जूट की खेती में कमी होने का कारण यह है कि असम में बुवाई के समय में सूखा पड़ गया और उत्तरी बंगाल व बिहार में बहुत ज्यादा वर्षा हो गयी। असम और उत्तरी बंगाल में एक के बाद दूसरी बाढ़ के आने से स्थिति और बिगड़ गयी और इसके कारण खड़ी फसल को काफी नुकसान पहुंचा। पिछले वर्ष जूट और मेस्ता की कीमतों के घट जाने के कारण भी इसकी खेती घट गयी। अतः 1974-75 में जूट और मेस्ता दोनों की पैदावार का अनुमान 60 लाख गांठ का लगाया गया है जब कि 1973-74 में इनका उत्पादन 76.3 लाख गांठे हुआ था। राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और सौराष्ट्र में उसके एक भाग में वर्षा कम होने के कारण गन्ने की बुवाई और इसकी खड़ी फसल पर बुरा प्रभाव पड़ा। परन्तु बाद के महीनों में अच्छी वर्षा होने से इस वर्ष गन्ने (गुड़) का उत्पादन पिछले वर्ष के 140 लाख मेट्रिक टन के स्तर के करीब ही होगा ।

2.14 उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि कपास को छोड़कर, 1974-75 में वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन 1973-74 के मुकाबले कम होगा । इस बात को ध्यान में रखकर कि भारत की अधिकांश वाणिज्यिक फसलें वहां पैदा होती हैं जहां केवल वर्षा के पानी से ही सिंचाई होती है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकांश फसलों की पैदावार पर मौसम का खास असर होता है । निसंदेह अगर सूखा झेल जाने और अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीज मिल जांय तो पैदावार में जो हर साल घटती बढ़ती होती रहती है वह न हो। परन्तु, जैसा कि पहले बताया गया है कि आजकल अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीजों में केवल लम्बे रेशे वाली कपास के बीज ही उपलब्ध हैं । उत्पादकता बढ़ाने के लिए कारगर उपायों के अभाव में वाणिज्यिक फसलों की पैदावार तभी बढ़ायी जा सकती है यदि आने वाले वर्षों में उस क्षेत्र के कुछ हिस्सों में जहां इस समय अनाज पैदा किया जा रहा है और उस क्षेत्र में जहां खेती की जाने की सम्भावना है वाणिज्यिक फसलें उगायी जानी शुरू कर दी जांय। चूंकि खेती की 73 प्रतिशत से भी अधिक भूमि में अनाज की फसल पैदा होती है इसलिए इस भूमि के थोड़े से हिस्से में भी यदि वाणिज्यिक फसलें उगायी जानी शुरू कर दी जांय तो इनके उत्पादन पर महत्वपूर्ण असर पड़ सकता है और यदि इस कार्य के लिए ली जाने वाली भूमि में सिंचाई भी की जाती हो तो इसका और भी असर पड़ेगा। परन्तु अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति में अनाज पैदा होने वाली भूमि में वाणिज्यिक फसल पैदा करना तभी अच्छा समझा जायगा जबकि पहले अनाज की खेती की पैदावार बढ़ायी जाय ।

2.15. सारांश यह है कि 1974–75 में अन्न का उत्पादन उतना ही होगा जितना 1973–74 में हुआ था । मौजूदा संकेतों के अनुसार वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन का सूचकांक भी 1973–74 के सूचक अंक से काफी भिन्न नहीं होगा । इन सभी बातों को ध्यान में लेने के बाद ऐसा लगता है कि 1974–75 में कृषि की पैदावार का कुल सूचक अंक 1973–74 के सूचक अंक के लगभग बराबर ही होगा ।

उर्वरक का उपयोग और ऋण की आवश्यकताएं

2.16. तेल-संकट आ जाने पर उर्वरकों के उत्पादन में काम आने वाली वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाने और विदेशों से मंगाये जाने वाले उर्वरकों की कीमतों में तेजी से वृद्धि हो जाने के कारण सरकार को मजबूर होकर पहली जून 1974 से कुछ खास वर्ग के उर्वरकों की कीमतें काफी बढ़ानी पड़ी । उदाहरण के तौर पर यूरिया की कीमतें लगभग 90 प्रतिशत तक बढ़ गयीं ।

2.17. यह आशंका व्यक्त की गयी है कि कीमतें बढ़ जाने से किसानों को रासायनिक उर्वरकों को खरीदना व इनका इस्तेमाल करना मुश्किल हो जायगा। जो थोड़े बहुत आंकड़े मिले हैं उनसे पता चलता है कि कीमतें बढ़ जाने पर भी जितनी मात्रा में इन उर्वरकों का इस्तेमाल करना चाहिए उतनी मात्रा में इनका इस्तेमाल करना

किसानों को अब भी लाभकारी ही है। तथापि यह मानना पड़ेगा कि खेती के काम आने वाली उर्वरकों जैसी वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि होने से कृषि-संबंधी क्रियाकलापों में अनिश्चितता बढ़ जाती करती है विशेष कर उन क्षेत्रों में जहां सिचाई की सुविधा न होने के कारण पानी का मिलना सुनिश्चित नहीं होता या सिचाई की सुविधाएं इस्तेमाल करने के लिये आवश्यक पावर और डीजल की कमी होती है। इसलिए स्थिति की बराबर समीक्षा करते रहने की जरूरत है।

2.18. यह अनुमान है कि 1974–75 में लगभग 29.8 लाख मैट्रिक टन उर्वरक (एन० पी० के०) प्राप्त होगा जितना कि 1973–74 में प्राप्त हुआ था। चूंकि उस समय से उर्वरकों की कीमतों में वृद्धि हो गयी है इसलिए किसानों की ऋण की आवश्यकताएं बहुत ज्यादा बढ़ गयी हैं खास तौर पर उन छोटे-छोटे किसानों की जो अपने पास बेचने के लिए फालतू अनाज के न होने पर अनाज की कीमतों के बढ़ने का कोई ज्यादा फायदा नहीं उठा सके हैं।

2.19. यह सभी स्वीकार करने लगें हैं कि किसान खेती के काम आने वाली वैज्ञानिक चीजों को तभी खरीद सकता है जब उसे ऋण मिलने की सुविधा प्राप्त हो। कुछ वर्षों से संस्थागत अल्पावधि, मध्यमअवधि और दीर्घावधि ऋणों में काफी वृद्धि हुई है। ये ऋण 1960–61 में 215 करोड़ रुपये के थे, 1973–74 में बढ़कर लगभग 950 करोड़ रुपये के हो गये और अनुमान है कि 1974–75 में बढ़कर 1122 करोड़ रुपये के हो जायंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें वृद्धि की काफी गुंजाइश है क्योंकि अभी भी संस्थागत ऋण कृषि की कुल ऋण की आवश्यकताओं का लगभग 35 प्रतिशत बठते हैं और इस बात के भी काफी प्रमाण हैं कि छोटे किसानों की आवश्यकताएं पर्याप्त रूप से पूरी नहीं की जा रही हैं। परन्तु पिछले दो वर्षों के दौरान जबरदस्त मूल्यवृद्धि के दबाबों को देखते हुए यह जरूरी हो गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणों का विस्तार करने और उनके लिए दिये जाने में पर्याप्त सावधानी बरती जाय। संस्थागत ऐजेंसियों से जो ऋण मिलते हैं उसमें और वृद्धि होने में बाधा पड़ रही है जिसका चिन्ताजनक एक कारण यह है कि प्राथमिक कृषि ऋण समितियों ने पहले से ही बहुत अधिक ऋण दे रखे हैं तथा उनकी बकाया रकमें भी बढ़ती जा रही हैं। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त किये गये अध्ययन दल की हाल की रिपोर्ट में बताया गया है कि 30 जून, 1972 तक 377 करोड़ रुपये के ऋण थे जिनकी रकम ऐसे बकाया ऋणों का 44 प्रतिशत बैठती है। अध्ययन दल ने दैवी कारणों के अलावा जिनके कारण फसलें खराब होती हैं, इस चिन्ताजनक स्थिति के जिन कारणों का पता लगाया है उसमें एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि कर्जदारों ने बहुत बड़े पैमाने पर जानबूझ कर ऋण की रकम (कुल बकाया राशि का चौथा हिस्सा) नहीं चुकाया है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को दिये गये ऋणों के बारे में भी इसी तरह की स्थिति पायी गयी है। अतः इस प्रवृत्ति को समाप्त करने तथा कृषि उपज के रास्ते में आने वाली मुख्य रूकावटों को दूर करने के लिए संस्थागत ऋणों के वितरण के मामले में तथा वसूली के मामले में कड़ा नियंत्रण लगाना जरूरी है।

निर्धन ग्रामीणों के लिए विशेष कार्यक्रम

2.20. ग्रामीण क्षेत्रों में जहां काफी बेरोजगारी है और लोगों के पास उत्पादन के एक जैसे साधन नहीं हैं वहां यदि कृषि की पैदावार बढ़ा भी दी जाय तो भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं है कि आर्थिक विकास से निर्धन ग्रामीणों को पर्याप्त लाभ पहुंचेगा। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की किसी भी मिली-जुली योजना का आधार संस्थागत परिवर्तन होने चाहिए जिससे किसानों को खेती के लिए जमीन थोड़ी बहुत बराबर बराबर मिले और निर्धन ग्रामीणों के कमाने की क्षमता में वृद्धि की जा सके।

2.21. इन उद्देश्यों के अनुसार अधिकांश राज्यों ने परिवार के आकार के आधार पर जोत की अधिकतम सीमा निर्धारित करते हुए व्यापक कानून बनाये हैं। परन्तु इन कानूनों को लागू करने के मामले में प्रगति धीमी रही है खास कर उन क्षेत्रों में जहां मिल्कियत के रिकार्ड पूरे नहीं हैं।

2.22. चौथी आयोजना के दौरान सरकार ने लघु किसान विकास अभिकरण और सीमान्तिक किसान और कृषि श्रमिक कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण तुरती रोजगार योजना और जनजातीय और पहाड़ी क्षेत्रों के विकास कार्यक्रम जैसे कई एक विशेष कार्यक्रम ग्रामीण जनता के अधिक कमजोर वर्गों के लाभ के लिए शुरू किये हैं। पांचवीं आयोजना में क्षेत्रीय विकास की एक व्यापक नीति के अन्तर्गत इन कार्यक्रमों में से अधिकांश कार्यक्रमों को सम्मिलित कर लेने का विचार है। राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशों के अनुसार छोटे और सीमान्तिक दोनों तरह के किसानों के लाभ के लिए लघु किसान विकास अभिकरण और सीमान्तिक किसान और कृषि श्रमिक कार्यक्रमों को एक सम्मिलित कार्यक्रम में मिला दिया गया है। पांचवीं आयोजना में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 160 परियोजनाएं शामिल की जायंगी जबकि इसकी तुलना में चौथी आयोजना में केवल 87 ऐसी परियोजनाएं शामिल की गयी थीं। अधिकांश राज्यों में नयी परियोजनाओं को चुनने का काम पूरा हो गया है और कुछ एक नयी परियोजनाओं पर 1974–75 में काम शुरू कर दिया गया है। अधिकांश योजनाएं वर्ष 1975–76 में शुरू की जायंगी। उक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत अच्छी फसलें उगाने और उसके साथ-साथ जहां भी संभव हो उपयुक्त सहायक व्यवसायों को प्रोत्साहन देने पर मुख्य रूप से जोर दिया जाएगा।